पात्रता और अभाव

अमर्त्य सेन

अकाल खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी से नहीं होता। अकाल वहां भी पड़ सकता है जहां प्रति व्यक्ति खाद्यान्न का उत्पादन संतुलित हो या अधिक हो। अकाल पड़ने के लिए कुछ और ही परिस्थितियां ज़िम्मेदार होती हैं।

1. भोजन और पात्रता:

इस किताब में हमने इस दृष्टिकोण पर सवाल उठाया है कि खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी आने से अकाल होता है। हाल में जो महत्वपूर्ण अकाल पड़े हैं उनके अध्ययन से पता चला है कि अकाल वहां भी पनप सकता है जहां खाद्यान्न की उपलब्धता में कोई व्यापक कमी नहीं आई हो। उन मामलों में भी जहां अकाल और प्रति व्यक्ति उपलब्ध खाद्यान्न में कमी साथ-साथ हुई हो, वहां भी अन्य कारकों के होने पर ही अकाल पड़ता है। 'खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी' वाला सिद्धांत भुखमरी के कारणों का सुराग इसलिए नहीं दे पाता है क्योंकि वह खाद्यान्न व लोगों के बीच के रिश्ते को छूता नहीं है। . . .

खाद्यान्न केन्द्रित नज़रिया भुखमरी के कारणों पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाल पाता है। मसलन वह यह नहीं समझा सकता है कि खाद्यान्न की कमी न होने के बावजूद भुखमरी क्यों होती है। वह यह भी नहीं समझा पाता कि – जब भुखमरी और खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी एक साथ हो – क्यों समाज के कुछ ही समूह भूखे मरते हैं जबकि उसी समय कुछ अन्य समूहों के पास भोजन उपलब्ध रहता है। दरअसल व्यापक स्तर पर खाद्यान्न

उपलब्धता और भुखमरी का रिश्ता बहुत दूर का है। इसके विपरीत जब हम कुछ विशिष्ट समूहों की खाद्यान्न उपलब्धता की बात करते हैं तब हम भुखमरी की समस्या के और करीब आ पहुंचते हैं।

लेकिन फिर भी हम भुखमरी का सिर्फ वर्णन ही कर पाएंगे, उसके कारणों की खोजबीन नहीं कर पाएंगे। ज़ाहिर है कि अगर कुछ लोगों को भूखे रहना पड़ा तो इसका मतलब है कि उनके पास पर्याप्त भोजन नहीं था। लेकिन सवाल यह है – उनके पास पर्याप्त भोजन क्यों नहीं था? समाज का एक तबका उपलब्ध भोजन पर कैसे अधिकार जमा लेता है, जबकि दूसरा तबका भूखा रह जाता है? ये सवाल हमें पात्रता के मुद्दे पर ले जाते हैं जिसे समझने के लिए हमें विशिष्ट अर्थशास्त्रीय क्षेत्र से निकलकर सामाजिक, राजनैतिक और कानूनी पक्षों में जाना होगा।

भोजन, या कुछ भी, हासिल कर पाने की किसी की क्षमता – इस बात पर निर्भर करती है कि समाज में चीज़ों की मिल्कियत और इस्तेमाल के हक कैसे हैं – किसको किस-किस तरह की पात्रता* है।

यानी कि उसकी मिल्कियत में क्या है, लेनदेन करने की क्या संभावनाएं उसके पास उपलब्ध हैं, उसे क्या चीज़ें मुफ्त में मिलती हैं और क्या उससे लिया जाता है। उदाहरण के लिए एक नाई अपनी श्रम करने की क्षमता और बाल काटने के हुनर पर अपना अधिकार रखता है। लेकिन वह इन

*** पात्रता:** अमर्त्य सेन मानते हैं कि एक व्यक्ति को भोजन कैसे हासिल होगा यह मुख्यतः समाज द्वारा निर्धारित किया जाता है – उस समाज की संस्थाओं व कानूनों द्वारा। इसीलिए वे अपने विश्लेषण में 'पात्रता' (Entitlement) की अवधारणा पर ज़ोर देते हैं न कि भोजन की उपलब्धता या व्यक्ति की इच्छा या क्षमता पर। यहां 'पात्रता' शब्द को एक विशिष्ट अर्थ में उपयोग किया जाता है। पुस्तक के तीसरे अध्याय में वे लिखते हैं – "पात्रता विश्लेषण. . . भोजन अर्जित करने के लिए समाज में जो तरीके उपलब्ध हैं उन पर ध्यान केंद्रित करता है। इसमें लोगों द्वारा भोजन उत्पादन करने की संभावनाएं, व्यापार की संभावनाएं, शासकीय अनुदानों पर उनका अधिकार और भोजन अर्जित करने के अन्य तरीके शामिल हैं।"

यानी किसी भी व्यक्ति की भोजन पाने की सिर्फ एक पात्रता नहीं है बल्कि कई पात्रताएं हैं। ये पात्रताएं उन तमाम बातों पर जैसे उसके उत्पादन, व्यापार, शासकीय अनुदान, भाई बंधुत्व रिश्ते आदि से निर्धारित होती हैं।

वह व्यक्ति या समूह भुखमरी का शिकार तब होगा जब ये तमाम पात्रताएं किसी न किसी कारण से शिथिल पड़ जाएं या निष्क्रिय हो जाएं।

आप समझ सकते हैं कि अंततोगत्वा भोजन की पात्रता सामाजिक रिश्तों पर निर्भर है और उनमे निर्धारित होती है। इसलिए आपको इस लेख में जगह-जगह पात्रता रिश्तों का ज़िक्र मिलेगा।

अनुवादक

जनवरी 1988 में ट्रिनिटी कॉलेज के मास्टर के पद को संभालने के लिए जाते हुए पारंपरिक वेशभूषा में अमर्त्य सेन। इस पद को ब्रिटेन की सबसे ऊंची अकादमिक नियुक्ति समझा जाता है।

दोनों को सीधे-सीधे नहीं खा सकता। खाना खरीदने के लिए उसे बाल संवारने की अपनी सेवा को बेचकर धन कमाना पड़ेगा। तो भोजन की उसकी पात्रता, समाज में पर्याप्त भोजन उपलब्ध होने पर भी खतरे में पड़ सकती है – यदि किसी कारण से समाज में बाल कटवाने की मांग खत्म हो जाती है, और यदि वो कोई और काम नहीं ढूंढ पाता, व उसे किसी तरह की सामाजिक सुरक्षा का आसरा नहीं मिलता।

इसी प्रकार चप्पल बनाने वाले की भोजन की पात्रता नष्ट हो सकती है अगर चप्पलों की मांग अचानक गिर जाती है या फिर चमड़ा मिलना बंद हो जाता है। तब समाज में खाद्यान्न उपलब्धता में बदलाव न होते हुए भी वह भुखमरी का शिकार हो सकता है।

एक मज़दूर को भोजन की पात्रता हासिल करने के लिए पहले अपनी श्रम शक्ति बेचकर पैसा कमाना पड़ेगा। अगर उसे काम न मिले और किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा सहायता न मिले तो वह भूखा सोएगा। यदि अनाज की तुलना में चप्पल, कटिंग या श्रमशक्ति (मज़दूरी) की कीमतों में भारी बदलाव हो जाए तो भी अलग-अलग समूहों की खाद्यान्न पात्रता भुखमरी के स्तर के नीचे गिर सकती है। अतः पात्रता रिश्ते की संपूर्णता इस बात को प्रभावित करती है कि उसके पास भुखमरी से बचने की क्षमता होगी या नहीं – अनाज का उपलब्ध होना उनमें से मात्र एक कारक है।

अक्सर यह कहा जाता है कि भुखमरी का कारण अनाज की कमी नहीं है, बल्कि आमदनी और क्रय शक्ति की कमी है। मोटे तौर पर यह विचार पात्रता के मुद्दे को छूता ज़रूर है: आखिर बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था में आमदनी निश्चय ही खाद्यान्न हासिल करने की पात्रता दिलाती है। हालांकि पूरी तरह योजनाबद्ध अर्थ-व्यवस्था में या कमी की अर्थव्यवस्था (Shortage Economy) में आमदनी के अलावा अन्य तरीकों से भी खाद्यान्न पात्रता प्राप्त की जाती है। फिर भी अकाल की अधिकांश परिस्थितियों को समझाने के लिए आमदनी आधारित तर्क अपनी जगह रखता है। लेकिन इसकी कमज़ोरी इस बात में है कि जहां पात्रता के लिए आमदनी मायने रखती है वहां भी आमदनी वाला सिद्धांत पात्रता पर केवल आंशिक रूप में प्रकाश डालता है। अगर हम यह कहें कि लोग इसलिए भूखे मरे क्योंकि उनके पास भोजन खरीदने के लिए पर्याप्त आमदनी नहीं थी तो तुरन्त सवाल उठेगा – आमदनी क्यों नहीं थी? और वे कितना कमा सकते हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे क्या और किस कीमत पर बेच

पाते हैं। अत: केवल आमदनी पर चर्चा को केन्द्रित रखना अधूरे चित्र को ही सामने लाता है। और फिर अक्सर 'आमदनी' शब्द का उपयोग सांकेतिक हो जाता है जैसे किसान द्वारा उगाए गए अनाज को उसकी आमदनी कहना अजीब लगता है। अपने द्वारा उगाए गए अनाज पर उसका अधिकार और पात्रता की बात ज़्यादा समझ में आती है।

कहने का मतलब यह है कि अकाल और भुखमरी को समझने के लिए भोजन पात्रता से जुड़ी तमाम बातों का अध्ययन आवश्यक है – खाद्यान्न की उपलब्धता या आमदनी इस समस्या के अंश मात्र हैं।

2. 'गरीब' – संज्ञा की उपयोगिता

एक छोटा किसान और भूमिहीन मज़दूर दोनों गरीब हो सकते हैं। लेकिन अकाल में दोनों की कुण्डलियां अलग-अलग काम करती हैं। दोनों गरीब ज़रूर हैं मगर अकाल का शिकार होने की संभावना दोनों के लिए अलग है। अत: इस प्रश्न के संदर्भ में उन्हें 'गरीब' की विशाल श्रेणी में रखने से समझ नहीं बन पाएगी – बल्कि उन्हें विशिष्ट एवं पृथक वर्ग के सदस्यों के रूप में देखना लाज़िमी होगा। दोनों पेशे से, साधन संपत्ति पर अधिकार के हिसाब से और जिन पात्रता रिश्तों से बंधे हैं उनके हिसाब से भी फर्क हैं। जनसंख्या का गरीब और अमीर में वर्गीकरण कहीं-कहीं उपयोगी हो सकता है। लेकिन यह भुखमरी, अकाल और यहां तक कि गरीबी के विश्लेषण में मददगार नहीं होगा।

बिलकुल मोटे रूप में करें तो 'पूरी जनसंख्या' के आधार पर बात की जा सकती है। 'खाद्यान्न उपलब्धता में कमी' वाला सिद्धांत इसी श्रेणी का उपयोग करता है, यह देखने के लिए कि प्रति व्यक्ति भोजन उपलब्धता में कमी आई कि नहीं। नतीजा अक्सर निरर्थक ही निकलता है।*

लेकिन पात्रता विश्लेषण के तरीके में इस तरह की मोटी-मोटी श्रेणियों (पूरी जनसंख्या, अमीर गरीब आदि) का महत्व बहुत सीमित है। इस विश्लेषण के लिए हमें अधिक परिष्कृत श्रेणियों व अवधारणाओं की ज़रूरत है, ताकि अलग-अलग समूहों की पात्रता का अध्ययन हो सके – जिसमें एक-सी पात्रता और साधन वाले लोगों को एक समूह में रखकर देखा जा सके। केवल 'गरीब' कहने से कार्य-कारण संबंधों को समझना संभव नहीं है। क्योंकि गरीबी की एक-सी अवस्था

* देखिए इस पुस्तक के अध्याय 6-9; इन अध्यायों में 1942-43 के बंगाल अकाल, 72-74 के इंथियोपिया के अकाल, उत्तरी अफ्रीका के अकाल और 1974 में बांगलादेश के अकाल की विस्तृत समीक्षा है – *अनुवादक।*

तक पहुंचने के लिए लोग कई रास्तों से गुज़रकर आ सकते हैं। अकाल की परिस्थिति का विभिन्न पेशे के लोगों पर अलग-अलग असर पड़ता है — भले ही वे सब गरीब हों। इस कारण अमीर, गरीब जैसी मोटी श्रेणियों से बचने की ज़रूरत है।

ये तो रही बात कार्य-कारण संबंधों को जांचने में 'गरीब' संज्ञा की उपयोगिता की। इस संज्ञा का उपयोग किसी देश की गरीबी की समस्या की तीव्रता का मूल्यांकन करने के लिए भी होता है। आमतौर पर गरीबी का अंदाज़ लगाने के लिए सारे गरीबों को एक साथ रखकर गिना जाता है। 'गरीबी रेखा' पर और उसके नीचे कितने लोग हैं यह समझने के लिए निश्चित ही यह श्रेणी उपयोगी है। . . . फिर भी गरीबी की स्थिति के मूल्यांकन के लिए भी गरीबों की अलग-अलग श्रेणियों के बीच विभेद करने की ज़रूरत है। अभाव कितना है इस आधार पर ये श्रेणियां बन सकती हैं। जब केवल गरीबों की गिनती होती है तो एक सामान्य गरीब और एक भुक्कड़, दरिद्र के बीच विभेद नहीं होता है। अक्सर यह भी देखा गया है कि गरीबों की संख्या भले न बढ़े गरीबों की हालत बदतर होती गई। यानी विभिन्न तरह की गरीबियों के बीच विभेद न करने से गरीबी का मूल्यांकन भी सटीकता से नहीं हो पाता।

तो कहना लाज़िमी होगा कि 'गरीब' संज्ञा न केवल मूल्यांकन के लिए अपर्याप्त है और कार्य-कारण संबंध समझने के लिए प्रतिकूल है, बल्कि 'नीति निर्धारण' को भी यह एक विकृत रूप दे सकती है। नीति निर्धारक यही प्रयास करते हैं कि जो लोग गरीबी रेखा के इर्द-गिर्द हैं उन्हीं पर ध्यान दिया जाए। जो लोग अत्यंत गरीबी की हालत में हैं और जिन्हें सबसे अधिक मदद की ज़रूरत है, उन्हें छुआ तक नहीं जाता। इस बात के कई प्रमाण मिल चुके हैं।

3. खाद्यान्न उपलब्धता और भुखमरी

इस चर्चा में हमने देखा कि 'खाद्यान्न उपलब्धता में कमी' वाला सिद्धांत पूरे देश के स्तर पर लागू करने से विभेदपूर्ण समझ बनाने में मदद नहीं मिलती है। विश्व स्तर पर इस सिद्धांत का प्रयोग तो और भी ज़्यादा निरर्थक हो जाता है। इसके बावजूद विश्व की जनसंख्या और खाद्य उपलब्धता का संतुलन बनाए रखने पर वर्तमान में काफी ज़ोर दिया जा रहा है। जबकि विश्व स्तर पर प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता में कमी आना दुनिया में भुखमरी बढ़ने के लिए बिलकुल भी ज़रूरी शर्त नहीं है, लेकिन यह मान लिया गया है कि दोनों के बीच गहरा संबंध है। . . .

. . . भविष्य में जो भी हो वर्तमान

में इस कथन के लिए कोई आधार नहीं है कि विश्व के स्तर पर जनसंख्या वृद्धि की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन धीमी गति से बढ़ रहा है।. . . अगर हम अपनी तस्वीर से संयुक्त राज्य अमेरिका को हटाकर भी देखें – जो कि दुनिया का एक प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक देश है – तो भी नहीं लगता है कि खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की दर जनसंख्या की दर से कम है या जनसंख्या में वृद्धि की दर ने खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की दर को पीछे छोड़ दिया है। . . .

फिर भी हमारे अध्ययन व विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि भयंकर अकाल पड़ने की स्थितियां बन मकती हैं – लेकिन इनका खाद्यान्न उत्पादन से कोई सीधा संबंध नहीं होगा। वहीं पात्रता विश्लेषण, खाद्यान्न उत्पादन को जटिल सामाजिक रिश्तों के ताने बाने के संदर्भ में देखता है। इन रिश्तों में बदलाव अकाल की स्थिति निर्मित कर सकता है – खाद्यान्न उत्पादन में बिना कोई कमी आए।

मेरा उद्देश्य खाद्यान्न उत्पादन या उससे संबंधित अध्ययनों के महत्व को नकारना नहीं है। वे अपनी जगह महत्वपूर्ण ज़रूर हैं।. . . लेकिन भुखमरी को लोगों के बीच के रिश्ते के रूप में देखा ज़ाना ज़रूरी है। भोजन प्राप्त करने की क्षमता पात्रता रिश्तों के तानेबाने पर निर्भर है।

इनमें से कुछ रिश्ते सीधे-सादे हैं जैसे किसान का अपने द्वारा उगाए गए अनाज पर हक या पात्रता। कुछ रिश्ते काफी जटिल हैं– जैसे खाना-बदोश पशुपालक मवेशियों की अदलाबदली से अनाज प्राप्त करते हैं और इस प्रकार अपने लिए उपलब्ध पोषण को बढ़ा पाते हैं। तो कुछ रिश्ते बाज़ार व्यवस्था पर निर्भर हैं – जैसे चीज़ें बनाकर, बेचकर भोजन अर्जित करना। जबकि कुछ रिश्ते सार्वजनिक (सरकारी) नीतियों पर निर्भर करते हैं – जैसे बेरोज़गारी भत्ता, लंगर, राहत कार्य आदि। कुछ व्यापक आर्थिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होते हैं तो कुछ स्थानीय विपदाओं से जुड़े हैं, वहीं कुछ और स्थानीय समस्याओं से। (जैसे क्षेत्रीय स्तर पर कीमतों के गिरने से या जलाशय में एक समूह को मछली पकड़ने से रोकने पर)। विभिन्न अकालों के अध्ययन में हमने इनके उदाहरण देखे हैं।

4. बाज़ार और खाद्यान्न

क्या अकाल के समय अकालग्रस्त इलाके में खाद्यान्न पहुंचाने का काम बाज़ार कर सकता है – यानी किसी क्षेत्र की खाद्यान्न कमी को पूरा करने के लिए दूसरे क्षेत्रों से खाद्यान्न उपलब्ध कराने में क्या बाज़ार की कोई भूमिका है? इस प्रश्न पर सदियों से खासकर ऐडम स्मिथ के ज़माने से बहस जारी

है। ऐडम स्मिथ (सन् 1776) का मानना था कि अकाल निवारण में बाज़ार की सकारात्मक भूमिका है। रॉबर्ट मालथस (सन् 1800) और अन्य लोगों ने स्मिथ का पुरज़ोर समर्थन किया। नीति निर्धारक लोग अर्थशास्त्रियों के विचारों से काफी प्रभावित थे, खासकर भारत के ब्रिटिश प्रशासक।

1812 में जब गुजरात में अकाल की परिस्थिति निर्मित हो रही थी तो बंबई प्रांत के गवर्नर ने सरकारी माध्यम से वहां अनाज पहुंचाने से इंकार कर दिया। उसने यह तर्क दिया कि यह काम बाज़ार का है। अपने निर्णय के पक्ष में उसने 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' के प्रसिद्ध लेखक ऐडम स्मिथ की दलील प्रस्तुत की। उससे कई दशक पहले वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल के अकाल (1783) में शासकीय माध्यम से अनाज पहुंचाया था। कर्नल बैयर्ड स्मिथ ने हैस्टिंग्स की नीति की आलोचना की। कर्नल स्मिथ ने कहा था कि हेस्टिंग्स ने शायद एडम स्मिथ का अपना अध्ययन ठीक से नहीं किया था, और कटाक्ष करते हुए उन्होंने कहा कि इतने कम समय में वे इसे समझ पाएं इसकी अपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि 'वैल्थ ऑफ नेशन्स' का प्रकाशन हुए अभी कुछ ही समय हुआ है। स्मिथ का यह प्रसिद्ध ग्रंथ कुछ ही वर्ष पूर्व 1776 में प्रकाशित हुआ था। इस तरह अकाल में दखल न देने की यह ब्रिटिश नीति भारत में लगभग 19 वीं शताब्दी के अंत तक बनी रही।

अक्सर ऐसा भी हुआ कि इस नीति के कट्टर पक्षधर सूखाग्रस्त इलाकों में अधिक अनाज पहुंचाने की बाज़ार की असफलता से निराश हुए। 1865-66 में पड़े उड़ीसा के अकाल के दौरान कटक ज़िले के कमिश्नर इस बात से हताश हुए कि निजी व्यापारी बाहर से इस क्षेत्र में अनाज नहीं लाए। उनका कहना था, "अर्थशास्त्र के तमाम नियम यही बताते हैं कि कटक क्षेत्र में अनाज की आपात मांग को देखते हुए दूसरे क्षेत्रों से इसकी पूर्ति होनी ही थी।" लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

रशीद ने यह तर्क दिया है कि अक्सर व्यापारी भी एक एकाधिकारी-गुट बनकर अनाज के आने जाने पर रोक लगा सकते हैं और विशेष अभाव की स्थिति को बनाए रख सकते हैं।**

रशीद का यह कथन सही हो सकता है, लेकिन ऐसे समय जब अकाल के साथ बाज़ार में भावों की गिरावट भी हो रही हो तब बाज़ार में दूसरे क्षेत्रों

** अर्थशास्त्र में यह अपेक्षा की जाती है कि अगर कई व्यापारी हैं और वे देखते हैं कि किसी जगह मांग भयानक रूप से बढ़ रही है तो उनमें वहां पर माल बेचने की होड़ लग जाती है ताकि सभी बढ़ी हुई कीमतों का लाभ उठाएं। लेकिन जब वे आपस में मिल जाते हैं तो माल को मांग वाले क्षेत्र में पहुंचने से रोक सकते हैं और इस तरह अभाव की परिस्थिति को बनाए रख सकते हैं -अनुवादक

से माल खींचने की क्षमता भी कम हो जाती है। एडम स्मिथ ने यह माना था कि बाज़ार में मांग बढ़ेगी तो पूर्ति भी होगी। लेकिन मांग बढ़ ही न पाए तो क्या होगा? अगर लोगों की क्रय शक्ति क्षीण हो जाए तो बाज़ार में मांग कैसे बढ़े?*

और तो और, कई अकालों के संदर्भ में देखा गया है कि एक तरफ लोग भूखे मर रहे हैं और वहीं अकाल से प्रभावित क्षेत्र से अनाज का निर्यात हो रहा है। कुछ हद तक यह 1973 के इथियोपिया के वोलो प्रांत के अकाल के दौरान देखा गया और 1974 के बांगलादेश के अकाल के समय भी। 1840 में पड़े आयरलैंड के अकाल के दौरान खाद्य सामग्री का निर्यात एक महत्वपूर्ण राजनैतिक मुद्दा था।. . . भारत में पड़े अकालों में भी ऐसे पहलू देखे गए।

अगर 'पात्रता' की दृष्टि से देखें तो इसमें कोई भी अनोखी बात नहीं है कि अकाल की स्थिति में उस इलाके में माल पहुंचाने की बजाए बाज़ार वहां से माल निकालने का काम करे। बाज़ार की मांग शारीरिक या मानसिक ज़रूरतों का प्रतिबिंब नहीं है – वह तो क्रय शक्ति की पात्रता के आधार पर किए गए चुनावों को प्रतिबिंबित करती है। अगर किसी के पास बेचने के लिए बहुत कुछ नहीं है या क्रय शक्ति नहीं है तो वह बाज़ार में मांग (खरीद) भी नहीं सकता है, और प्रतिस्पर्धा में उन लोगों के मुकाबले मात खा जा जाता है जिनकी ज़रूरत भले ही उससे कम तीव्र (less acute) हो मगर जिनकी बाज़ार पात्रता अधिक है। . . . तो इस तरह खाद्यान्न का अकालग्रस्त क्षेत्र से बाहर जाना शायद बाज़ार का एक मूल गुणधर्म है जो कि पात्रता को ध्यान में रखता ज़रूरत को नहीं। . . .

अकाल अथवा पात्रता ह्रास

पात्रता विश्लेषण का तरीका यह मानता है कि अकाल एक आर्थिक विपदा है, महज एक खाद्यान्न संकट नहीं। यह सही है कि भुखमरी के शिकार सभी लोगों की परेशानी एक-सी है मगर उस हालात तक पहुंचने के उनके कारण और रास्ते अलग-अलग हैं।

हमने जिन चार अकालों का

* पुस्तक के सातवें अध्याय में इथियोपिया के एक प्रांत 'वोलो' में 1972 के भयंकर अकाल की चर्चा है। सेन दिखाते हैं कि इस क्षेत्र के गरीब किसानों की फसल खराब हुई – उनके पास खाने के लिए कुछ नहीं बचा, खरीदने के लिए साधन नहीं था। मवेशी, ज़मीन आदि सब चीज़ों की कीमतों में भारी गिरावट आई। इसके कारण उन्हें बेचने से भी फायदा नहीं हो पाया। इस वजह से बाज़ार में मांग नहीं बढ़ पाई और अनाज की कीमतें अकाल पूर्व स्थिति पर ही बनी रहीं यानी बाज़ार में अनाज की मांग तभी बढ़ेगी जब लोगों में क्रय शक्ति हो – अनुवादक

अध्ययन किया उनकी एक तुलनात्मक तालिका यहां प्रस्तुत है।(तालिका साथ वाले पृष्ठ पर दी गई है)।

अंत में मैं इस 'पात्रता विश्लेषण' के संबंध में चार महत्वपूर्ण बातें कहना चाहता हूं।

1. यह तरीका अकाल के अध्ययन के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जो किसी एक खास कारण पर केन्द्रित नहीं है। यह एक परिकल्पना है जिसका सत्यापन वास्तविकता के अध्ययन से किया जा सकता है। अगर यह दिखाया जा सकता है कि अकाल, पात्रता ह्रास के कारण से न होकर किसी सोचे समझे हुए चयन के कारण होता है (जैसे जब चावल खाने वाले गेहूं खाने से इंकार कर दें, या लोग काम करने से मना कर दें) या फिर अन्य किसी कारण से जो पात्रता से जुड़ा नहीं हो (जैसे कि लूटपाट) तो यह विश्लेषण लागू नहीं होगा। इस तरीके का मुख्य महत्व यह नहीं है कि हम जांचें कि क्या अधिकांश अकाल 'पात्रता' के संकट के कारण हुए – अलबत्ता हम पाएंगे कि वस्तुस्थिति यही थी – पर जहां पात्रता के यह संकट होते हैं, वहां उनके स्वरूपों और कारणों को निरूपित कर पाना ही इसकी उपयोगिता है। अगर हम अलग-अलग तरह के पात्रता ह्रास को बेहतर समझ पाते हैं तो नीति निर्धारण, अकाल से बचाव, राहत कार्य आदि बेहतर हो सकेगा।
2. यह एक रोचक बात है कि अकाल पूरी अर्थव्यवस्था के चढ़ाव (boom) और मंदी (Slump) दोनों स्थितियों में पड़ सकता है। सामान्य धारणा में अकाल को मंदी या उतार के दौर से जोड़कर देखा जाता है। चढ़ाव के दौर में अकाल पड़ना सामान्य समझ को स्वीकार्य नहीं होता, लेकिन बंगाल (1943) जैसे अकाल अर्थव्यवस्था के तेज़ी के दौर में हुए हैं। अनाज का उत्पादन बढ़ने पर भी अकाल संभव है अगर बाज़ार या शासन व्यवस्था किसी समूह के प्रतिकूल हो जाए। तेज़ी के समय अगर तेज़ी का असर सभी समूहों पर एक-सा न हो तो ऐसा हो सकता है – जैसे शहर पर ज़्यादा अनुकूल प्रभाव और गांव पर कम अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव; या फिर एक समूह जब किसी दूसरे समूह के पात्रता अधिकार पर कब्ज़ा कर ले। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि गरीबी रेखा के इर्द-गिर्द वाला समूह तेज़ी का फायदा उठा पाता है और उस रेखा के ऊपर उठ जाता है लेकिन उसके ही समानांतर अत्यंत गरीब तबका अकाल का शिकार बन सकता है।

कौन-सा अकाल	क्या भोजन उपलब्धता में भारी गिरावट थी?	कौन मे पेशे के लोग सर्वाधिक प्रभावित हुए	क्या उस समूह के लोगों ने बड़ी मात्रा में अपने साधन खोए	क्या वह समूह क्रयशक्ति हस्तांतरण से प्रभावित हुआ	क्या उस समूह की पात्रता पर सीधा संकट हुआ	क्या उस समूह की व्यापार संबंधित पात्रता का नुकसान हुआ?	सामान्य आर्थिक स्थिति कैसी थी
बंगाल का अकाल 1943	नहीं	ग्रामीण मज़दूर	नहीं	हां	नहीं	हां	तेज़ी
इथियोपिया का अकाल (वोलो) 1973	नहीं	किसान	थोड़ा सा, हां	हां	हां	नहीं	मंदी
इथियोपिया का अकाल (हरेरघे) 1974	हां	पशु पालक	हां	हां	हां	हां	मंदी
बांग्लादेश का अकाल 1974	नहीं	ग्रामीण मज़दूर	पहले, हां	हां	नहीं	हां	मिली जुली

यानी कुल गरीबों की संख्या घटने के बावजूद अकाल पड़ना भी अस्वाभाविक नहीं है।

खाद्यान्न उपलब्धता में कमी और भोजन की सीधी पात्रता के बीच विभेद करने की ज़रूरत है। अगर एक किसान की फसल नष्ट हो जाती है, भले ही अन्य लोगों की फसल ठीक रहे और पूरे क्षेत्र में फसल अच्छी रही हो, वह किसान भुखमरी की कगार पर आ जाता है। इसका विपरीत भी हो सकता है – अन्य लोगों की फसल खराब हुई हो और एक की अच्छी हुई हो। ऐसे में वह अकाल से बच सकता है भले ही परिस्थितियां कमी की हों। कहने का मतलब यह है कि अकाल की समस्या उस क्षेत्र में अनाज आयात करने से दूर नहीं हो सकती है। इसके लिए पात्रता को सुदृढ़ बनाना होगा।

4. पात्रता को केन्द्र में रखकर अध्ययन करने का एक और नतीजा है – कानूनी अधिकारों पर गौर करना। अन्य कारक तत्व (जैसे बाज़ार) कानूनी ढांचों के अंतर्गत और उनके माध्यम से काम करते हैं (मिल्कियत के कानून, अनुबंधित रिश्ते, आदि)। दरअसल खाद्यान्न उपलब्धता और पात्रता के बीच कानून खड़ा है। भूखों की मौत सख्त बेबाकी के साथ कानूनी व्यवस्था का अक्स खींच डालती है।

अमर्त्य सेन: विख्यात अर्थशास्त्री। 3 नवंबर 1933 को जन्मे अमर्त्य सेन की पढ़ाई रविंद्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन, कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज और कैम्ब्रिज के ट्रिनिटी कॉलेज में हुई। 23 साल की उम्र में वे कलकत्ता के जाधवपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हो गए थे। इसके बाद वे दिल्ली विश्वविद्यालय, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और हावर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे। इसी साल के शुरू में उन्हें कैम्ब्रिज में ट्रिनिटी कॉलेज का मास्टर मनोनीत किया गया। इस पद को ब्रिटेन की सबसे ऊंची अकादमिक नियुक्ति समझा जाता है।

संपादकीय टीप: सन 1981 में अमर्त्य सेन ने एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक के अंतिम अध्याय का भाषांतरण यहां दिया जा रहा है। वास्तव में यह शब्दशः भाषांतरण न होकर भावानुवाद है। लेकिन यथासंभव हर वाक्य में लेखक की अभिव्यक्ति, भाव व अर्थ को बनाए रखने का प्रयास है। कुछ वाक्यों का अनुवाद गैर-ज़रूरी मानकर छोड़ा गया है। उन्हें '. . .' से इंगित किया गया है।

दरअसल 19 वीं शताब्दी से गरीबी और भुखमरी की समस्या भारतीय अर्थशास्त्रियों के चिन्तन और शोध में प्रमुख रही है। सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने अपनी किताब *Poverty : an Unbritish Rule in India* में इस विवेचना की परंपरा की नींव डाली। इसी सिलसिले में अमर्त्य सेन की यह किताब एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है।

इसमें उन्होंने न केवल इस मुद्दे पर विचार किया कि भुखमरी क्यों होती है बल्कि इस समस्या को समझने के लिए कौन-सा दृष्टिकोण उपयोगी है उस पर गौर किया। अतः अर्थशास्त्र के लिए यह किताब एक मील का पत्थर साबित हुई।

लेकिन सेन यहां नहीं रुके। हाल के अध्ययनों में उन्होंने इस समस्या के एक और पक्ष को टटोला है। वह है – शासन पद्धति। वे कहते हैं:

"निश्चय ही यह एक दिलचस्प तथ्य है कि किसी लोकतांत्रिक देश में किसी महत्वपूर्ण अकाल का कोई उदाहरण नहीं है – जिन देशों में सरकार विपक्ष के प्रति सहिष्णुता रखती है; चुनावी प्रक्रिया को स्वीकार करती है और जिसकी खुले आम आलोचना की जा सकती है। अगर किसी सरकार को संसद में विपक्ष के सवालों का जवाब देना हो, मीडिया में आलोचना का सामना करना पड़ता हो और निश्चित समय के अंतराल में चुनाव का सामना करना पड़ता हो, ऐसी सरकार अकाल की परिस्थिति को नज़रअंदाज़ करने की गलती कतई नहीं कर सकती है। लेकिन जहां इस तरह की शासन व्यवस्था नहीं है, वहां इस बात की कोई गारंटी नहीं है।"

इस बात के उदाहरण स्वरूप वे चीन के भयंकर अकाल (1958-61) – जिसमें दो से तीन करोड़ लोग मरे थे – का ज़िक्र करते हैं। वे यह भी बताते हैं कि भारत का लोकतंत्र कितना भी कमज़ोर हो उसने इतना तो कमाल कर दिखाया कि 1947 के बाद बड़े पैमाने पर देश में कोई अकाल नहीं हुआ – हालांकि फसल के अक्सर नष्ट होने से अकाल का साया मंडराता रहा है।

(देखिए : ज़्यों ड्रीज़ एवं अमर्त्य सेन)

सेन की किताब जब छपी थी तो कई समालोचकों की टिप्पणी थी कि इसमें नया कुछ नहीं कहा गया है। अपने एक मित्र को लिखे पत्र में सेन ने इस आरोप को स्वीकार करते हुए लिखा, "यह सही है कि मैंने कुछ नया कहने का प्रयास नहीं किया। . . . अगर हमारी और आपकी दादी या नानी सत्ता में होतीं तो शायद अकाल कभी न पड़ता।"

उनका आशय था कि जन-सामान्य अपने अनुभव से अर्थव्यवस्था की जो समझ बनाते हैं उसे अर्थशास्त्रियों व शासकों तक पहुंचाना ही उनका उद्देश्य है। सेन ने इतना तो किया ही, मगर जन-सामान्य की समझ को और गहरा और पुख्ता करने में भी मदद की।

*इस लेख का अनुवाद **सी. एन. सुब्रह्मण्यम** ने किया है। वे एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध हैं।*